(सन्देश १५) - अक्टूबर 2011 का प्रथम पाक्षिक निवेदन -

"लोकसंग्रह"

पंक्ति संख्या

१. भगवान् ने कर्मयोगी को लोकसंग्रह को दृष्टि में रखते हुए ही कर्म करने की आज्ञा दी है (गीता ३/२०)। इसके लिए उन्होंने राजर्षि जनक का उदाहरण दिया है तथा निरासक्त होकर निरन्तर कर्तव्य-कर्मों को करने के लिए कहा है (गीता ३/१९)। **केवल सत्कर्म ही कर्तव्य कर्म हो सकते हैं।**

२. **सत्कर्म -** अपना कल्याण करने के इच्छुक व्यक्तियों को परम पूज्य बाबूजी ने अपनी अतुल सम्पत्ति में भागीदार होने के लिये अनुमति दी है। अपनी अतुल सम्पत्ति का वर्णन उन्होंने निम्नांकित शब्दों से किया है - ५

१. सब में परमात्मा को देखना,
२. भगवत्कृपा पर अटूट विश्वास,
३. भगवन्नाम का अनन्य आश्रय

इन भावों से प्रेरित होने वाले सभी सत्कर्म करने से लोकसंग्रह सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। **लोकसंग्रह से समाज और परिवार सुव्यवस्थित और सुसंगठित होते हैं।** ऐसा करना ही आवश्यक कर्तव्य है। **आवश्यक कर्तव्य वे हैं जो यज्ञ, दान एवं तप करने के भाव से प्रेरित होते हैं** (गीता १८/५)। इसीलिये जो भी कर्म आवश्यक समझते हुए हम लोग वर्तमान में करते हैं, **उन्हें छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है**। केवल **उनके प्रेरक भावों में परिवर्तन** करने की आवश्यकता है, यदि इन भावों का मेल सत्कर्म के उपरोक्त ३ भावों से न हो। १०, १५

लोकसंग्रह का सरल अर्थ है शास्त्रेक्त कर्तव्यों को निःस्वार्थ भाव से केवल सामाजिक व्यवस्था की पुष्टि तथा भगवान् के सृष्टि चक्र में योगदान देने के भाव से करना। इसके लिए सांसारिक सुख, धन-सम्पत्ति या मान-सम्मान की कोई इच्छा न रखते हुए अपने प्रत्येक कर्म को केवल यज्ञ-रूप में करना चाहिए। इसमें छोटे-बड़े सभी कर्म सम्मिलित हैं - जीविकोपार्जन, गृहस्थी की सम्भाल, पढ़ाई, सामाजिक नियमों का पालन आदि। इन कर्मों को इस उत्कृष्ट सेवा-भाव और दक्षता के साथ किया जाना चाहिए कि 'मेरे माध्यम से भगवान् विष्णु ही अपनी प्रजा का पालन कर रहे हैं'। **इस प्रकार लोकसंग्रह के लिये कर्म करने से सभी लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः हो जाती है।** २०

भगवान् ने (गीता ३/२५) में कहा है कि इन कर्मों में **तत्परता एवं लगन** का वही स्तर होना चाहिए जो अज्ञानी एवं कर्म और कर्मफल में रचे-पचे हुए लोगों का होता है। भगवान् ने यह भी बताया है कि **लोक-संग्रह की दृष्टि से कर्म करने** वाले कर्मयोगी को परम सिद्धि की प्राप्ति अर्थात् **भगवत्प्राप्ति शीघ्र होती है** (गीता ५/६)। ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले **अन्य लोगों पर भी उस व्यक्ति का प्रभाव पड़ता है** और वे भी फिर कर्मयोग में प्रवृत्त हो जाते हैं (गीता ३/२१), क्योंकि अन्य लोगों की दृष्टि में **ऐसा मनुष्य ही श्रेष्ठ होता है** (गीता ३/७)। २५

३. **प्रचलित भ्रमपूर्ण मान्यता -** कुछ लोग 'लोकसंग्रह' का यह तात्पर्य समझते हैं कि सांसारिक वस्तुओं अथवा भोग सामग्री को बटोरना कदाचित् लोक संग्रह है। **ऐसा समझना भारी भूल है।** ३० यह तो 'भोग-संग्रह' है, जो सारे अनिष्टों का मूल कारण है। स्वार्थ, कामना, आसक्ति, ममता इत्यादि भावों की संलग्नता से किये गये कर्म असत् होते हैं। असत् कर्मों को करने से न तो इस लोक में कल्याण होता है और न परलोक में ही (गीता १७/२८)। अतः इन भावों को त्यागने से ही कर्म सत्कर्म की श्रेणी में आ सकते हैं।

सत्कर्म के भावों से प्रेरित कर्मों को निरन्तर बढ़ते हुए उत्साह एवं लगन से किया जाना चाहिये। ऐसा करने से परमात्मा की कृपा का अनुभव हो जाता है और उससे कर्म करने वाले को सभी आवश्यक सुविधायें अपने आप प्राप्त हो जाती हैं - **योगक्षेमं वहाम्यहम्** (गीता ९/२२)। ३५